

वन आन्दोलन एवं महिलाएँ : एक अध्ययन

महेन्द्र सिंह पछाई*

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में इस सदी के प्रारम्भिक दशकों में कुमाऊँ में सरकारी वन-नीति की कृषि अर्थव्यवस्था पर पड़े प्रभावों तथा सामाजिक विरोध के स्वरूप को समझने की कोशिश की गई है। अब यह क्षेत्र फिर "चिपको आन्दोलन" के कारण चर्चा में आया। पर्वतीय जीवन में जंगलों के महत्व ने अनेक रूपों में संरक्षण की एक प्राकृतिक प्रक्रिया को जन्म दिया। प्रारम्भ में कई शिखर स्थानीय देवताओं को समर्पित होने से आस-पास के जंगल सुरक्षित रखे जाते।

भारत में जंगलों के सरकारीकरण और व्यापारिक दोहन का सिलसिला तब बढ़ा जब बढ़ते व्यापार के कारण बिट्टेन में समुद्री जहाज बनाने हेतु कुछ विशिष्ट पेड़ों का अभाव होने लगा। अन्ततः 1864 में जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से जंगलात विभाग स्थापित हुआ।

स्वतंत्रता के बाद 1952 में भारत सरकार ने अपनी नई जंगलात नीति का निर्माण किया लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्मित नियम ज्यादा परिवर्तित नहीं हुए, न ही जनता के जंगल सम्बन्धी कष्टों का निवारण ही हुआ। ग्रामीणों ने 1964 में गोपेश्वर में दशौली ग्राम स्वराज्य संघ की स्थापना की जिसका उद्देश्य समग्र ग्रामीण विकास के साथ जंगलों से सम्बन्धी समस्याओं से जूझने और उनका समाधान निकालना था। इसी बीच सरकार ने गोपेश्वर से कुछ किलोमीटर की दूरी पर मण्डल के जंगल काटने के आदेश दे दिया।

मुख्य शब्द : जंगलात, बन्दोबस्त, चिपको (वन) आन्दोलन, आरक्षित (रिजर्व) जंगल, पुर्नजनन और संरक्षण।

प्रस्तावना

ऐतिहासिक शोध में प्रायः समसामयिक मामले अध्ययन के विषय सुझाते हैं। 'भारतीय वनों की दुःखद स्थिति' सम्बन्धी बहस ने इसके कारणों के इतिहास में जाने की प्रेरणा दी। सरकारी वन नीति के विरुद्ध वनवासियों के वर्तमान आन्दोलनों ने अतीत के अल्पज्ञात आन्दोलनों को जानने का कौतूहल जगाया है। इस प्रकार वन-विनाश का इतिहास वनवासियों के सतत संघर्ष में अधिक प्रासंगिक हो गया। इससे देश के तमाम हिस्सों में चले संघर्षों के स्वरूपों को भी समझा जा सकता है।

चिपको आन्दोलन बाहरी लोगों/एजेन्सी द्वारा वनों के शोषण के विरोध में उठे आन्दोलनों में सर्वाधिक विख्यात हो गया है। फिर भी अधिक संगठित होने के बावजूद जंगलात आन्दोलन सरकारी हस्तक्षेप के प्रारम्भिक दिनों से अपनाई गई व्यापारिक जंगलात नीति के विरोधों के क्रम में अगला माना गया है। 1911 से 1917 के बीच कुमाऊँ के जंगलों को आरक्षित बनाने के लिए हिंसक और सतत विरोध हुए। इसकी परिणति 1921 के सक्रिय आन्दोलनों में हुई जो पहले 'कुली बेगार' और फिर जंगलात व्यवस्था के विरुद्ध उठे।

कई जंगल क्षेत्र स्वतः विकास के परिणाम स्वरूप नहीं, बल्कि वहाँ पेड़ों के रोपण और संरक्षण के चिन्ह मिलते हैं। विशेषकर पूर्वी-कुमाऊँ में मन्दिरों के आस-पास देवदार का रोपण, प्राकृतिक जंगलों में रूपान्तरित हो चुका था। ये क्षेत्र कुछ पेड़ों से सैकड़ों एकड़ में फैले जंगलों के रूप में थे।¹ बताया जाता है कि 1853 में मन्दिरों के निकट देवदार की श्रेष्ठ जातियाँ थीं।² इस सदी के दूसरे दशक में एक जंगलात अधिकारी यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि गाँव के चारागाह को ईधन और चारे के लिए घेराबन्दी तथा अच्छी देखभाल के साथ रखा जाता था। दूसरी ओर पारम्परिक रूप से अनेक गाँवों में संजायत की जमीन पर भी पेड़ लगे थे, इन्हें ग्रामीण क्रम से ईधन के लिए प्रयोग में लाते थे। गढ़वाल के चान्दकोट परगने में गाँव की सीमा के भीतर के पेड़ तथा टहनियों को निश्चित समय में काटा जाता था।

1864 में जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से जंगलात विभाग स्थापित हुआ, जिसका उद्देश्य रेलवे स्लीपरों के लिए शाल, टीक तथा देवदार जैसी प्रजातियों का पता लगाना था।³ इसके साथ सतजल तथा जमुना घाटी के देवदार के पेड़ों का पता लगाने हेतु दल भेजे गये।⁴ जंगलों के तेज कटान से सरकार को यूरोप से स्लीपरों का आयात करने के लिए मजबूर कर दिया था, लेकिन आयातित स्लीपरों के स्थान पर देशी स्लीपरों के प्रयोग पर बल दिये जाने पर जंगलात विभाग द्वारा

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

हिमालयी चीड़ के इस्तेमाल पर ध्यान दिया गया ताकि यह रोगाणुरोधी उपचार में अनुकूल निकल सके।⁷

कुमाऊँ में अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक काल में जंगलों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया, उन्हें निकटवर्ती गाँवों के जमींदारों के अधिकार पर छोड़ दिया गया तथा कुछ बीहड़ भाग को नापा गया। तत्पश्चात् आदेश जारी किया गया कि इन जंगलों को ग्रामीणों के नाम पट्टे पर दिया जाय ताकि वे खेती कर सकें। तदनुसार 1839 ई. से 1860 तक 634 पट्टों पर जमीन दी गई, जिसमें 62,538 रुपयों की आय हुई, जो निरन्तर बढ़ती गई।⁸ दूसरी ओर, कुमाऊँ के ग्रामीणों के वन सम्बन्धी अधिकारों में निरन्तर कमी होती गयी। 1915 से 1878 के मध्य सरकार ने भाबर के शाल के जंगलों का दोहन किया। नैनीताल के आस-पास के जंगलों को 1850 और रानीखेत तथा अल्मोड़े के जंगलों को क्रमशः 1873 तथा 1875 में सीमांकित किया गया। 1878 से 1893 के मध्य उक्त वनों को 1876 के वन अधिनियम के अन्तर्गत आरक्षित घोषित किया गया।⁹ अल्मोड़ा और गढ़वाल के अनेक क्षेत्रों को आरक्षित या संरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया। 17 अक्टूबर 1893 के अधिनियमानुसार समस्त रिक्त भूमि, जो ग्रामीणों की नाप भूमि के अन्तर्गत नहीं थी या पहले से आरक्षित (रिजर्व) जंगलों को संरक्षित जंगल घोषित किया गया। हालांकि सैक्शन 28 के अनुसार आवश्यक जाँच पड़ताल नहीं की गई। इस प्रकार जिला संरक्षित जंगल अब जंगल क्षेत्र से बाहर बर्फीले शिखरों, घाटियों, तालाबों, मन्दिरों की भूमि, चारागाहों, सड़कों, इमारतों तथा दुकानों तक फैल गए।¹⁰

2 अक्टूबर 1894 को साल, देवदार तथा चीड़ सहित आठ प्रजातियाँ आरक्षित की गईं। ईंधन व चारे के उपयोग और इमारती लकड़ी के सम्बन्ध में नियम बनाए गए और ग्रामीणों द्वारा किसी भी प्रकार के वन उत्पादों को व्यापार निषिद्ध कर दिया गया। 5 अक्टूबर 1903 को कुमाऊँ के जिला संरक्षित जंगलों का बन्द सिविल जंगल, जिन्हें सरकार द्वारा पुर्नजनन और संरक्षण के लिए आवश्यक समझा गया। इसी प्रकार से खुले सिविल जंगल जिनमें 1893 के अधिनियम के अधीन ग्रामीण अपने अधिकारों का उपयोग कर सकता था। 1911 में संरक्षित जंगलों से एक सुरक्षित जंगल क्षेत्र बनाने का निर्णय लिया गया। 1911 से 1917 के बीच तीनों जिलों में किए गए बन्दोबस्त स्वभाविक थे। जिस बात पर 1893 में जिला संरक्षित जंगल बनने के पश्चात् गढ़वाल के डिप्टी कमिश्नर द्वारा टिप्पणी की गई थी कि जंगलात प्रशासन मुख्य रूप से ग्रामीणों से झगड़े करने के लिए बना है।¹¹ जिन स्थानों पर जनता का प्रत्यक्ष विरोध सामने नहीं आया है, वहाँ भी जनता ने अपने अधिकारों को सीमित होने के सम्बन्ध में गहराई से सोचा। आरक्षित जंगलों के गठन के समय गढ़वाल के जंगलात बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा जनता की बातें इस प्रकार से समझी गयीं कि ऊपर से नीचे तक सबके मन में यह विचार है कि सरकार उनसे उनके जंगल छीन रही है तथा उनसे उनकी अपनी सम्पत्ति लूट रही है।¹²

अतः ग्रामीणों में जंगलात नियमों के प्रति असन्तोष कई रूपों में प्रकट हुआ। गढ़वाल की पिंडर पट्टी के कुछ लोगों द्वारा अपने गाँवों को ही छोड़ देने के बारे में सोचा गया था। ये ग्रामीण एक अंग्रेज बागान मालिक के पास जमीन मांगने तक गए। क्योंकि नये जंगलात नियम इतने कठोर हो गये थे कि इन नियमों को मानने के बजाय वे नये जिले तथा जलवायु में जाकर प्रवासी बनने को तैयार थे।¹³

“कुमाऊँ फारेस्ट ग्रिवांसज कमेटी” का गठन कमिश्नर विंढम की अध्यक्षता में किया।¹⁴ लेकिन कुमाऊँनियों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा क्योंकि वे अपने पिछले सुखद अतीत की ओर देखते थे, जब उन्हें जंगल में हर प्रकार की स्वतंत्रता थी और उसमें किसी प्रकार का दखल नहीं दिया जाता था। ग्रामीणों ने कमेटी के स्वरूप पर असंतोष व्यक्त किया और आन्दोलन की शुरुआत हो गयी, जिसमें बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष की हिस्सेदारी रही। इस जन विरोध को दबाने हेतु 1925 में “कुमाऊँ वन समिति” की स्थापना हुई। उसने कुमाऊँ के जंगलों को मद्रास प्रेसीडेन्सी के नमूने पर सामुदायिक रूप देने का सुझाव पेश किया। सामुदायिक स्वरूप के अध्ययन के लिए वहाँ के डिप्टी कलेक्टर कैलाश चन्द्र त्रिवेदी को मद्रास भेजा। त्रिवेदी ने वहाँ से लौटकर सिफारिश की कि प्रथम श्रेणी के जंगलों से जंगलात विभाग से सभी कर्मचारी हटा देने चाहिए। उनका कहना था, जंगलात विभाग की अपेक्षा वनवासी अपने वनों को कहीं अधिक मानते हैं। जंगलों का प्रबन्ध पूर्णरूप से ग्रामीणों के हाथ में सौंप देना चाहिए, जंगलों में जंगलात विभाग की अनावश्यक अनुपस्थिति तनाव को बढ़ाने का कार्य करती है।¹⁵ जन आक्रोश तीव्र होता जा रहा था, जिससे समिति इस नतीजे पर पहुँची कि जंगल नियमों का कड़ाई से लागू किया जाना अन्ततः दंगे और खून खराबे में बदल सकता है। इस समिति के बन्दोबस्त के सम्बन्ध में देवकीनन्दन पाण्डे का लेख शक्ति में छपा था कि जंगलात हमारा भोजन है, ये हमारे प्राण हैं। जंगलात को छीनने वाला हमारे भोजन को छीनता है, वह हमारे प्राणों को छेदता है। जंगलात का प्रश्न हमारे जीवन-मरण, हमारी उन्नति-अवन्नति का प्रश्न है।¹⁶ दूसरी ओर गढ़वाल में भी अच्छी घास उगाने के लिए चीड़ के जंगलों में आग लगाने की घटनाएँ सामने आयीं, क्योंकि वहाँ अभी व्यापारिक वानिकी तथा पुर्नजनित क्षेत्रों को चराई तथा आग से बचाने का कार्य फैला नहीं था। अतः वहाँ सरकार द्वारा नियन्त्रित जंगलों

को उतनी क्षति नहीं पहुँची जितनी कि अल्मोड़े जिले में।

इस दौर में 1926 से 1933 के बीच वन नियमों का उल्लंघन किया गया। सामूहिक उल्लंघनों में पशुओं को सामूहिक रूप से चराना, जंगली सम्पत्ति को आग लगाना और आग लगाने की सूचना अधिकारियों को न देना सम्मिलित है। 1930-31 में जंगलों में आग लगाने की घटनाएं हुईं, जिन्हें सरकार ने आगजनी की संज्ञा दी। इस आन्दोलन की अगली तीव्र लहर 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान प्रकट हुई। चनौदा (अल्मोड़ा) का लीसा डिपो जला दिया गया, पश्चिम में हरिद्वार से लेकर पूर्व में रामनगर तक लकड़ी के समस्त गोदामों को जलाने का कार्यक्रम बनाया गया पर वह सफल न हो सका। लेकिन गंगोली का जंगलात विश्राम ग्रह तथा रामनगर का डाक बंगला जला दिया गया। गढ़वाल में सियासेण का डाक बंगला और चमोली का पोस्ट आफिस भी जलाया गया।¹⁷

एक-डेढ़ दशक के बाद जनता में स्टार पेपर मिल को लकड़ी दिए जाने के विरुद्ध आक्रोश जमा होने लगा। पूरन चन्द्र तिवारी, हरिदत्त काण्डपाल (भूतपूर्व सदस्य विधान सभा), प्यारे लाल गुप्त (भूतपूर्व सदस्य विधान परिषद), हरगोविन्द पंत, गोवर्द्धन तिवारी और मोहन सिंह मेहता आदि ने जंगलात नीति पर बहसों की और सरकार पर दबाव डाले, फलस्वरूप विधान सभा में इस सम्बन्ध में बातचीत होने लगी। स्टार पेपर मिल के विरुद्ध समाचार पत्रों में छापा जाने लगा जिससे जनता में जाग्रति उत्पन्न होने लगी कि सरकार हमारे हक-हकूकों पर आघात करने जा रही है। नागपुर अधिवेशन में पूरन चन्द्र तिवारी ने जंगलात सम्बन्धी पर्चा पारित किया, जिसमें उत्तर प्रदेश सरकार की जंगलात नीति पर प्रहार किया था। जब पूरन चन्द्र तिवारी पंडाल में चढ़कर पर्चा बांट रहे थे तो गोविन्द बल्लभ पंत और सम्पूर्णानन्द ने कहा - यह क्या हो रहा है? वहाँ पर बैठे जंगलात मंत्री अली जहीर को इंगित करते हुए कहा कि इस समस्या का समाधान तत्काल होना चाहिए।¹⁸ तत्पश्चात् लखनऊ में बजट अधिवेशन के अवसर पर उत्तराखण्ड के सभी विधायकों ने विधान सभा तथा विधान परिषद में जंगलात नीति पर जोरदार प्रहार किया, लेकिन इससे कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सरकार जंगलात की समस्याओं को सुलझाने में कामयाब नहीं रही। अपितु ग्रामीणों की समस्याएँ बढ़ती ही चली जा रही थीं। उनके मन में जंगलों के प्रति अशांति बनी थी। एक प्रकार से ब्रिटिश शासन से चले आ रहे जंगलात सम्बन्धी नियमों का अधिक प्रभाव महिलाओं पर ही पड़ा, उन्होंने अपने इस रोष को अन्ततः 1970 के बाद प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करते हुए आन्दोलन खड़ा किया। विश्व की लगभग 25 प्रतिशत तथा कुमाऊँ की 90 प्रतिशत जनता ईंधन हेतु जुगलों पर निर्भर थी। पूर्वी अफ्रीका में महिलाएँ एक माह में 6 दिन लकड़ी एकत्रित करने में व्यतीत करती हैं, जबकि कुमाऊँ की महिलाओं को लकड़ी एकत्रित करने के लिए प्रतिदिन 5 से 7 घंटे और 10 से 20 कि.मी. दूरी तय करनी पड़ती है, जो कि जंगलात के विनाश के साथ-साथ बढ़ती जा रही है। जहाँ एक ओर जंगल वर्षा द्वारा लाभ पहुँचाते और आवश्यकताओं की तमाम चीजें प्रदान करते हैं। वर्षा से उपजाऊ मिट्टी के बह जाने से पेड़ों की जड़ें कमजोर होती हैं, पेड़ों का गिरना बढ़ता है तथा ग्रामीणों को आवश्यकता की चीजें पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती हैं। जिसके कारण अधिकांश व्यक्तियों को अपने घरों से निकल कर शहर चले जाना पड़ता है। वहाँ से परिवार के पालन-पोषण हेतु अपनी कमाई मनीआर्डर द्वारा भेजते हैं, जिससे घर-परिवार का खर्चा चलता है। इन तमाम बातों का प्रत्यक्ष प्रभाव महिलाओं पर पड़ना स्वाभाविक था, जो पति की अनुपस्थिति में घर का सारा कारोबार सम्भालती थीं। जीवन बहुत कठिन और कष्टप्रद होने से - पैली घास, लाखुड़, पानी, तबब होली सभी धाणी (अर्थात् पहले घास, लकड़ी, पानी चाहिए, उसके बाद काम होगा) कहते हुए वे आत्महत्या कर बैठती। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मन्सूरा गाँव (टिहरी गढ़वाल) की सात महिलाओं द्वारा एक साथ अपने शरीर को बांध कर नदी में कूद मारकर आत्महत्या करना था।¹⁹

दूसरी ओर जंगल विनाश के कारण हिमालय की सुरम्य पहाड़ियां खल्वाड़ हो गयी थी, घाटियां रेत, बजरी के ढेर, नदियों के प्रवाह अस्थिर हो गया था, भू-स्खलन बढ़े तथा वन्य जीव-जन्तु तेजी से लुप्त होते जा रहे थे। पर्यावरण तो बिगड़ा ही, स्थानीय लोगों के जीवन के सामाजिक, आर्थिक पक्ष पर भी बुरा असर पड़ा। इन लोगों का जीवन मुख्यतः इन्हीं वनों पर निर्भर है। वन उनके लिए जड़ी-बूटियों, साग-सब्जियों, लकड़ी, जलावन तथा खेती के औजार बनाने की लकड़ी के मुख्य स्रोत हैं। वनों के सीमित होने से ये चीजें दुर्लभ होने लगीं और स्थानीय लोगों का जीवन दिनों-दिन अधिकाधिक कठोर और कष्टमय होता चला गया। जिससे वे यह सोचने को मजबूर हुए कि इस कठिन परिस्थितियों से कैसे निपटा जाय। गढ़वाल में पेड़ बराबर काटे जाने लगे। परिणाम स्वरूप अनेक स्थानों पर भू-स्खलन आये और अन्ततः 20 जुलाई 1970 की अलकनन्दा की बाढ़ से समस्त गढ़वाल तथा मैदानों में तबाही मची। 16 मोटरें, 16 पैदल पुल, 25 बसें, 55 आदमी, 142 पशु, 101 गाँवों के 604 मकान, 500 एकड़ फसल से युक्त खेत, 47 पनचक्कियाँ, 26 गौशाला, लिपट, सिंचाई की मशीन आदि बर्बाद हो गये।²⁰ उत्तर प्रदेश सरकार ने 1973-74 में संघ को अंगू के पेड़ खेती के औजार के लिए देने से इन्कार कर दिया, जबकि इससे पूर्व अंगू के पेड़ जनता को बराबर दिये जाते थे। अब जंगलात विभाग ने जनता के अधिकारों का हनन करते हुए अंगू के पेड़ खेल की सामग्री बनाने वाली मैदानी कम्पनियों को बेचने प्रारम्भ कर दिये थे। इस पर ग्रामीणों ने कोई आपत्ति

व्यक्त नहीं की। उनका सोचना था कि जरूरत पूरी होने के बाद खेल सामग्री के लिए लकड़ी दी जाय, लेकिन जंगलात विभाग सारे पेड़ कम्पनियों को भेजता रहा जिससे एक पेड़ पर लगभग 100 से 400 प्रतिशत लाभ सम्पन्न लोगों की जेबों में जा रहा था। वहीं दूसरी ओर पहाड़ी किसान गरीबी की बददतर स्थिति की ओर अग्रसर होता जा रहा था।²¹ जनता ने जंगलात विभाग से अंगू के पेड़ों की मांग की, परन्तु सरकार ने इस बात को अनसुना किये रखा (जबकि 1968 में पर्वतीय लघु विकास के लिए बनी ए. के. सिंह समिति ने अपनी रिपोर्ट में जनता के लिए अंगू के पेड़ों की सिफारिश की थी)। उत्तर में जंगलात विभाग ने लिखकर भेजा कि किसी भी संस्था को अंगू के पेड़ देना विभाग की दृष्टि से ठीक नहीं है। अतः अंगू के बदले चीड़ के पेड़ अवश्य दिये जा सकते हैं।²² इस दोहरी नीति पर ग्रामीणों को यह कहते सुना गया कि जिस प्रकार माँ बाघ के सम्मुख अपने पुत्र को बचाने के लिए उसे अपनी छाती से चिपका लेती है, उसी प्रकार हम पेड़ों से चिपककर उनकी रक्षा करेंगे।²³ जनता में असंतोष बढ़ता ही गया। एक प्रकार से आन्दोलन की भूमिका तैयार हो रही थी। जिसे देखकर स्वयं जंगलात विभाग असमंजस में पड़ गया और वह पुलिस के माध्यम से जनता के असंतोष को दबाना चाहती थी।

इसी दौरान जंगलों को सुरक्षित रखने हेतु विश्व पर्यावरण पर स्टॉकहोम सम्मेलन ने वनों की मुख्य पैदावार के रूप में प्राण-वायु और जल के महत्व को स्वीकारने के लिए वातावरण बनाया। इस प्रकार महिलाओं द्वारा चलाये गये "चिपको" आन्दोलन ने जंगल को बचाने में निर्णायक भूमिका निभाई। हाँलाकि प्रारम्भिक वर्षों में जंगलों के शोषण की प्रक्रिया का स्वागत अज्ञानतावश ग्रामीण जनता ने भी किया। वे समझती थी कि जंगलों के कटान से गाय-भैंस आदि को चराने तथा आने-जाने में सुविधा होगी और जंगली जानवरों के भय से छुटकारा मिल जायेगा।²⁴

जंगल की समस्याओं ने ग्रामीण महिलाओं की बिखरी शक्ति को संगठित कर, उन्हें अपनी शक्ति का आभास करा दिया। कम्पनी के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पुरुषों का सहयोग न लेकर स्वयं आन्दोलन की शुरुआत की। दूसरी तरफ आर्थिक लाभ के मोह में पुरुषों के कदम डगमगाते हुए दिखाई दिये। अंत में महिलाओं की शक्ति ने बगावत का रूप धारण किया और 22 अक्टूबर 1971 को चमोली के मुख्यालय में महिलाओं ने दूर-दूर ये आकर जलूस, ठेकेदारी प्रथा का अंत, ग्रामीणों के वन अधिकारों की वापसी के लिए "वन जागे, वनवासी जागे" तथा "आज हिमालय की ललकार, जंगल पर गाँवों का अधिकार" के नारे लगाये।²⁵ सरकार चुपचाप तमाशा देखती रही और कोई सराहनीय कार्य नहीं किया।

26 जनवरी 1973 को जिला चमोली के मण्डल गाँव जहाँ उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इलाहाबाद की एक खेल-कूद कम्पनी को काटने के लिए दिये गये अंगू के पेड़ों को गाँव के लोगों को काटने नहीं दिया। कुछ समय पहले उन्हें बैलों का जुआ बनाने के लिए यह कहकर ये पेड़ नहीं दिये थे कि वन विज्ञान की दृष्टि में यह सम्भव नहीं है। इसके उत्तर में सर्वोदय कार्यकर्ता बालम सिंह बिष्ट के नेतृत्व में महिलाओं ने प्रतिरोध के स्वर में कहा - हम पेड़ नहीं काटने देंगे, पहले हम कटेंगे तभी पेड़ कटेंगे, ये हमारे जीवन के आधार हैं। जिन पेड़ों को हमने पाला-पोसा, उनका प्रयोग हम अपने जिन्दा रहने के लिए तो नहीं कर सकते, परन्तु यहाँ से बहुत दूर आमोद-प्रमोद के साधनों के निर्माण के लिए उन्हें ठेकेदारों को बेचा जा सकता है, यह कैसा विज्ञान है? उन्होंने विज्ञान को यह कहकर चुनौती दी कि यदि पेड़ काटने के लिये कुल्हाड़ी वाले आये तो हम चिपककर उनकी रक्षा करेंगे²⁶ और वास्तव में पेड़ों से चिपक गये। यह पहला शुभ अवसर था, जब पेड़ों पर चिपक कर उन्हें बचाने का कार्य चला।

19 जून 1973 को मन्दागिनी घाटी रामपुर फाटा में पेड़ छापे गये लेकिन जनता ने जंगल सुरक्षा हेतु नारे लगाये और गीतों द्वारा पेड़ की पुकार सामने रखी।

मैं तुम्हारे लिए जीवित रहता हूँ, इसलिए मैं युगों से इन फलों में मिठास भरकर तुम्हारे सामने झुकता रहता हूँ, मैं हवा, पानी और छाया लेकर तुमको पालता-पोसता हूँ। मैं अन्न हूँ, मैं दूध हूँ, मुझे मत काटो, मुझे लगाओ और धरती को सजाओ, खेत की मेड़ पर, पहाड़ की ढाल पर, मैं खड़ा हूँ। मैं मिट्टी को बचाता हूँ, उसे बनाता हूँ, मुझे मत काटो, याद रखो नीचे गाँव है।

छोटे-छोटे बच्चे भी चिपको (वन) आन्दोलन में महिलाओं के साथी रहे हैं, धरती माता की रक्षा के लिए अभूतपूर्व त्याग की भावनाओं का विकास हो रहा था। सिल्यारा गाँव के एक दस वर्षीय बालक धमेन्द्र से जब यह पूछा कि वह पाँच कि. मी. दूर अमृतसर के जंगलों में पेड़ पर चिपकने के लिए क्यों गया? तो उसका उत्तर था, "पिछली बरसात में भू-स्खलन के कारण हमारे सब खेत नष्ट हो गये थे, मेरी विधवा माँ फूट-फूटकर कर रोयी। क्योंकि उसके पास हम तीन भाईयों का पालन-पोषण करने के लिए दूसरा साधन नहीं था। मुझे लगा कि दूसरे गाँव में पेड़ कटेंगे तो वहाँ भी रेड़ा आयेगा और खेत दबेंगे, मेरी माँ की तरह दूसरी माँ भी रोयेंगी। माताओं के आँसू पोंछने के लिए मैं इस आन्दोलन में शामिल हुआ।"²⁷

अभी जंगलों के कटान का विरोध आन्दोलनकारियों के मन में धूमिल भी नहीं हुआ था कि रेणी में सनसनी फैल

गयी कि 2-3 जनवरी 1974 को देहरादून के टारुन हॉल में रेणी के जंगल की नीलामी होने वाली है। इस बार सवाल 5-10 पेड़ों का न था बल्कि देवदार के दो हजार चार सौ इक्यावन पेड़ों का था।²⁸ अंत में रेणी जंगल का जंगल 4 लाख 71 हजार में नीलाम हो गया।²⁹ इस बात को सुनकर महिलाएँ आन्दोलन को हिंसात्मक रूप देने को तैयार हो उठी। 24 मार्च 1974 को रेणी गाँव के जंगल के पास दो लड़कियाँ पशु चराने गयी थी, उन्होंने देखा कि मजदूर आरा कुल्हाड़े लेकर ऊपर की ओर आ रहे हैं। वे भागते-भागते खेतों में काम कर रही महिलाओं के पास पहुँची, देखते-देखते वे महिलाएँ तथा लड़कियाँ एकत्रित हो गयीं तथा उन्होंने 50 वर्षीय गौरा देवी को अपना नेता चुन लिया।³⁰ वे दौड़-दौड़ कर जंगल की ओर भागे और वहाँ पहुँच कर मजदूरों से स्पष्ट कह दिया कि “यह हमारा मायका है हम इसे नष्ट नहीं होने देंगे”। इसके साथ ही मजदूरों और महिलाओं में झड़प होने लगी। तभी एक मजदूर बोला हम यहाँ से पालकी में जायेंगे, न की पैदल, उत्तर में महिलाओं ने कमर से धोती खोलकर पालकी बनाई और उस मजदूर को इसमें डालकर बाँधा और उठाकर आगे बढ़ी तो मजदूर भय से चिल्लाने लगा – मुझे माफ कर दीजिये मैंने देख ली तुम्हारी पालकी। मैं पैदल चलने को तैयार हूँ।³¹ यह खबर आस-पास के इलाकों में पहुँच गई। वहाँ से भी महिला-पुरुष रेणी पहुँचने लगे। अब यह एक वन आन्दोलन बन गया, चिपको का नारा आकाश में छा गया और ढोल की थाप के साथ ऋषिगंगा और विष्णुगंगा की धारियों में गूँजने लगा।

आन्दोलनकारियों के गहरे दर्द ने पत्रकारों, वैज्ञानिकों और राजनीतिज्ञों के दिल दिमाग पर भी असर किया। 9 मई 1974 को उत्तर प्रदेश सरकार ने चिपको आन्दोलन की मांगों पर विचार करने के लिए एक उच्च स्तरीय समिति के गठन की घोषणा की। दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति वैज्ञानिक वीरेन्द्र कुमार इसके अध्यक्ष थे। गहरी छान-बीन के बाद समिति ने पाया कि गाँव वालों और चिपको आन्दोलनकारियों की माँगें सही हैं। समिति ने यह सुझाव दिया कि इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण हिस्सों में वन रोपने का कार्य युद्ध स्तर पर शुरू किया जाये। सरकार ने 13,371 हैक्टेयर की वन कटाई योजना वापस ले ली। चिपको आन्दोलन की यह बहुत बड़ी विजय थी।³²

इस आन्दोलन में तब अधिक निखार आया जब कि 1976 में टिहरी गढ़वाल जिले की हैवल घाटी में लोगों ने घायल चीड़ के पेड़ों पर गीली मिट्टी की पट्टी करके उसके बाद लीसा निकालने के लिए ठोकी गयी लोहे की पत्तियाँ उखाड़कर उनकी रक्षा की और अढ़वाणी गाँव में काटने के अंकित पेड़ों का रक्षा बन्धन कर उनकी रक्षा करने का संकल्प प्रकट किया। उन्होंने वनों की कटाई और वनाधारित उद्योगों से रोजगार के अल्पजीवी और अर्थव्यवस्था के नारे लगाये – “क्या हैं जंगल के उपकार, लीसा, लकड़ी और व्यापार” को चुनौती देते हुए बिल्कुल भिन्न, स्थायी अर्थव्यवस्था के इस मांग का घोष किया –

क्या है जंगल के उपकार! मिट्टी पानी और बयार।

मिट्टी, पानी और बयार, जिन्दा रहने के आधार।³³

एक प्रकार से आन्दोलन पूरे उत्तराखंड में लोकप्रिय होता जा रहा था। आन्दोलनकर्ता अपनी बोली में गीतों के माध्यम से जंगल की तबाही के बारे में जनता को अवगत कर रहे थे।³⁴ अंत में विजय महिलाओं की हुई। हैवल घाटी के जंगल कटने से बच गये और महिलायें अपना रोष सरकार के खिलाफ दिन-दहाड़े जलती हुई लालटेन लेकर व्यक्त कर रही थी।³⁵ सरकार ने मौका देखकर पारी देवी, श्यामा देवी-रामपुर, टिहरी गढ़वाल, जानकी देवी-पौड़ी आदि को टिहरी जेल में बंद करा दिया।³⁶ इतनी अधिक संख्या में यह गढ़वाल क्षेत्र में महिलाओं की पहली गिरफ्तारी थी।

निरन्तर सफलताओं के कारण आन्दोलन तीव्र होता जा रहा था, दूसरी तरफ वनों की नीलामी भी बराबर हो रही थी। 15 फरवरी 1977 चांचरी धार (द्वाराहाट) में जंगलात विभाग द्वारा स्टार पेपर मिल्स, सहारनपुर के लिए लगभग 60,000 पेड़ों का कटान किया जाना था।³⁷ अंत में महिलाओं की सक्रियता से पूरा जंगल कटने से बच गया। इन्हीं तमाम महिलाओं के प्रयासों से ही अल्मोड़ा जिले में चांचरी धार, दूमकाधार तथा डूंगरी पैतौली के अलावा अन्य स्थानों की जनता ने जन-आन्दोलन के द्वारा पेड़ों की कटाई रोकने में सफलता पाई। कई स्थानों पर महिलाओं ने मंगल दलों के संगठनों के सहयोग से वनीकरण, दीवाल बन्दी, वृक्षारोपण के गढ़वे खोदना तथा नये पेड़ लगाने का कार्य अपने हाथ से कर रही थीं। उत्तराखंड की महिलाओं ने अपनी संगठित शक्ति से सारे विश्व में एक प्रकार से तहलका मचा दिया।

अंत में यह कहना चाहता हूँ कि हम यह भूल जाते हैं कि हमारे पर्यावरण को ठीक-ठाक रखने में पेड़ों का कितना महत्व है। पेड़, सौर ऊर्जा को ईंधन के रूप में बदलने का सबसे बड़ा स्रोत है। पेड़, लघु उद्योग हैं जो सौर ऊर्जा को भोजन, रेशे व ईंधन के रूप में फोटो सिन्थेसिस विधि से बदल देते हैं। आक्सीजन, जो जीवन का आधार है पेड़ों से ही प्राप्त होती है। लेकिन आज की औद्योगिक सभ्यता, जिसमें गैस व धुएँ का बोलबाला है, में पेड़ों के महत्व की अनदेखी करना मानव की महान भूल होगी। पेड़ पृथ्वी के ऊपर ढक्कन का काम करते हैं जो जलवायु, दशा को नियमित करने में विशेष योगदान करते हैं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वन ही जीवन है।

संदर्भ

1. पाठक शेखर, गुहा रामचन्द्र, उत्तराखण्ड जनान्दोलन-1, पहाड़-2, पृष्ठ 112.
2. पंत गोविन्द बल्लभ, द फारेस्ट प्राबलम ऑफ कुमाऊँ, 1922, पृष्ठ 30-31.
3. भाटिया, एस.बी., वर्किंग प्लान (डब्ल्यू.पी.) फॉर द ईस्ट अल्मोड़ा फारेस्ट डिवीजन, 1924-25 से 1933-34 तक, 1926.
4. बोर, एन. एल., मैनुअल आल इंडियन फारेस्ट बाटनी, 1953-13 वनों के इन्सपेक्टर जनरल दित्रिच ब्रान्डीज ने भारत के लगभग सभी प्रदेशों में वन संरक्षण की पारम्परिक विधि के विकसित वन क्षेत्रों के होने की सूचना दी थी, उद्धृत रामचन्द्र गुहा, पहाड़-2.
5. पिर्यसन, जी. एस., सब हिमालय फारेस्ट ऑफ कुमाऊँ एण्ड गढ़वाल सलैक्सन्स, 1869.
6. गुहा, रामचन्द्र, ब्रिटिश कुमाऊँ, वन व्यवस्था और वनान्दोलन, पहाड़-2, पृष्ठ 116.
7. उक्त ।
8. जोशी, डी.पी., अरण्यपाल वन कार्य योजना रिपोर्ट नैनीताल, उ.प्र. प्रिन्टिंग्स प्रेस, पृष्ठ 56-61.
9. गुहा, रामचन्द्र, पृष्ठ 117.
10. जंगलात विभाग फाईल, 11 / 1908, उ.प्र. स.अ. गढ़वाल के डिस्ट्रिक्ट का फरवरी 1907 का पत्र ।
11. नेलसन, जे.सी., फारेस्ट सैटलमेन्ट रिपोर्ट ऑफ द गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट, 1916, पृष्ठ 10-11.
12. जंगलात विभाग फाईल 163 / 1916 में मुरादाबाद के जिला सेशन जज का पत्र, 2 मार्च 1916.
13. आस्मेस्टन, नार्थ गढ़वाल वर्किंग प्लान, पृष्ठ 67.
14. शक्ति, 3 फरवरी 1925, पृष्ठ 4.
15. गुहा, रामचन्द्र, पहाड़-2, पृष्ठ 126.
16. शक्ति, 30 अक्टूबर 1981, पृष्ठ 2-5.
17. डोगरा, भारत, पृष्ठ 6.
18. राहा, एम. के., द हिमालय हेरीटेज ।
19. भट्ट, चण्डी प्रसाद, द चिपको मूवमेन्ट, पृष्ठ 251.
20. भट्ट, चण्डी प्रसाद, भट्ट श्यामा देवी, साक्षात्कार, 12.12.2001, गोपेश्वर ।
21. मिश्र, अनुपम, पृष्ठ 11.
22. युगवाणी, 26 मई 1974, पृष्ठ 2.
23. भट्ट, चण्डी प्रसाद, कुंवर शिशुपाल सिंह, साक्षात्कार, 12.12.2001, गोपेश्वर ।
24. मिश्र, अनुपम, पृष्ठ 25.
25. भट्ट, देवेश्वरी, भट्ट सुन्दरी, भट्ट श्यामा देवी, साक्षात्कार, 12.12.2001.
26. उक्त, पृष्ठ 149.
27. मिश्र, अनुपम, पृष्ठ 56.
28. भट्ट, चण्डी प्रसाद, साक्षात्कार ।
29. देवी गौरा, देवी मूसी, साक्षात्कार, डोगरा भारत, पृष्ठ-49, दिनमान, 8 दिसम्बर 1974, पृष्ठ-11, जनदिशा, 9 अप्रैल 1978.
30. भट्ट, चण्डी प्रसाद, साक्षात्कार-12.12.2001, गोपेश्वर ।
31. नौटियाल, शिवानन्द, पृष्ठ 152-53.
32. उक्त ।
33. भट्ट चण्डी प्रसाद, बहुगुणा सुन्दरलाल, साक्षात्कार ।
34. भट्ट, श्यामा देवी, भट्ट चण्डी प्रसाद, साक्षात्कार ।
35. बहुगुणा, सुन्दर लाल, चिपको : हिन्दुस्तान, 20 मई 1978, पृष्ठ 4.
36. उत्तरायण, 24 मार्च 1978, पुण्डीर प्रिंटिंग प्रेस टिहरी से प्राप्त सूचना (1978).
37. उत्तरायण, 24 मार्च 1978, पृष्ठ 6.